तिरथयर

जैन भवन

वर्ष ६ अंक ६ : जनवरी १९८३

बनारसी साड़ी
इण्डियन सिल्क हाउस
कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

Prakash Trading Company

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram : PEARLMOON

Telephone : 22-4110
22-3323

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Mir Bhor Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office :

The Bikaner Woollen Mills
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ६ : अंक ६

जनवरी १९८३

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७००००७

सूची

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र २६१

धातुमय जैन प्रतिमाएँ २६७

ललितांग देव २७३

अर्द्ध कथानक २८४

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या २८८

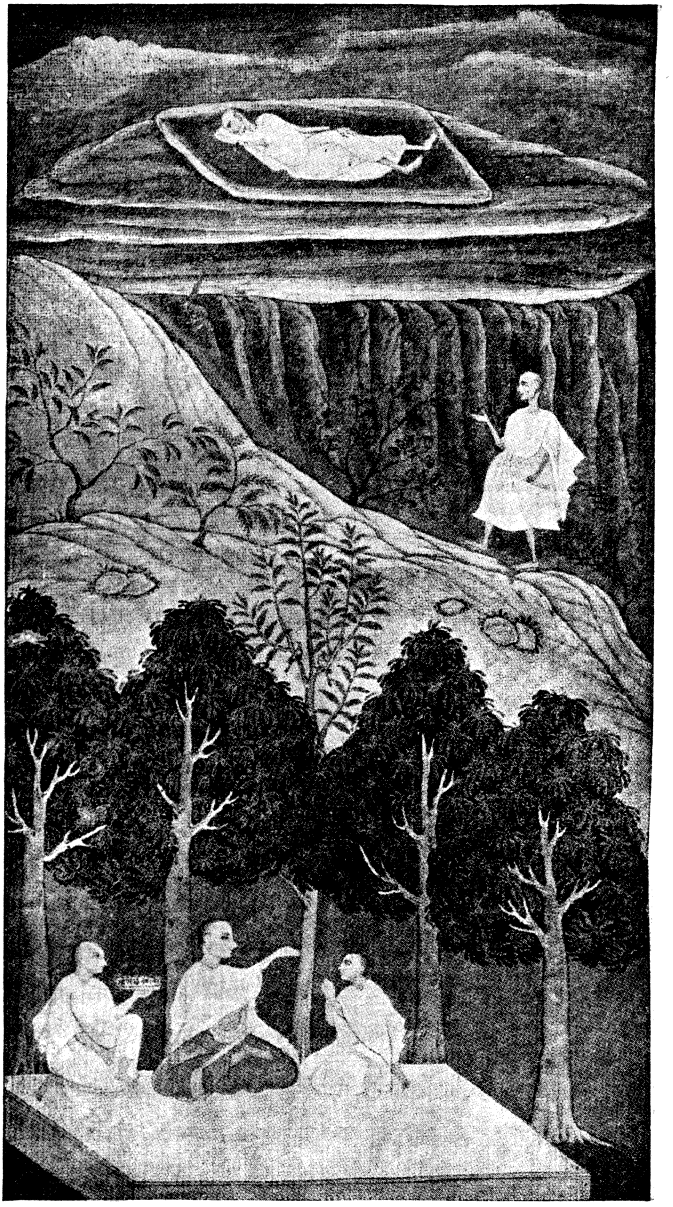

शालिभद्र की संलेखना

धन्य और शालिभद्र चरित्र (नरेन्द्रसिह सिंघी संग्रह)

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

कच्छ और महाकच्छ आदि राजा जो कि तपस्वी हुए थे गंगा नदी के दक्षिण तट पर मृग की भाँति वनचर बने विचरण करने लगे। वल्कलवस्त्र धारण किए हुए वे चलायमान वृक्ष से लगते थे। वे गृहस्थ घरों के अन्न को वमन किया हुआ अन्न समझ कर कभी ग्रहण नहीं करते। चोला और बेला आदि तपस्या करते रहने के कारण उनकी देह का मांस सूख गया था अतः उनके शुष्क शरीर वायु रहित धौंकनी की तरह लगते। पारने के दिन भी वे वृक्ष से पतित पर्ण और फल मात्र खाते एवं मन ही मन भगवान का ध्यान कर वहीं निवास करते।

भगवान ऋषभ मौन धारण कर आर्य और अनार्य समस्त देशों में विचरण करने लगे। एक वर्ष निराहार रहकर प्रभु चिन्तन करने लगे—तेल के द्वारा जिस प्रकार दीप प्रज्ज्वलित रहता है, जल के द्वारा वृक्ष जीवन्त रहता है उसी प्रकार प्राणी मात्र का शरीर भी आहार के द्वारा ही टिका रहता है। अतः साधुओं को बयालीस दोषों से रहित मधुकरी वृत्ति से भिक्षा ग्रहण कर उपयुक्त समय में आहार ग्रहण करना उचित है। एतदर्थ विगत दिनों की भाँति अब भी यदि मैं आहार ग्रहण नहीं करूँगा तो मेरा शरीर टिक सकेगा पर चार हजार साधु जिस प्रकार आहार न मिलने के कारण पीड़ित होकर भ्रष्ट हो गए उसी प्रकार अन्य साधु भी भ्रष्ट हो जाएँगे। ऐसा सोचकर प्रभु समस्त नगर के मण्डन रूप गजपुर (हस्तिनापुर) नगर में भिक्षा के लिए अग्रसर हुए। वहाँ बाहुबली का पुत्र सोमप्रभ राजा के पुत्र श्रेयांस ने स्वप्न देखा कि चारों ओर से कृष्णवर्ण बने सुवर्णगिरि को दुग्ध भरे घड़ों से अभिषेक कर उन्होंने उसे उज्ज्वल वर्ण बना दिया है। उसी दिन सुबुद्धि नामक श्रेष्ठी ने स्वप्न में देखा—श्रेयांस कुमार ने सूर्य से निर्गत सहस्र किरणों को पुनः सूर्य में संस्थापित कर दिया। परिणामतः सूर्य और देदिप्यमान हो उठा। सोमप्रभ राजा ने देखा—अनेकों शत्रुओं के द्वारा घिरे हुए एक राजा ने उनके पुत्र की सहायता से विजय प्राप्त की। तीनों ही अपने स्वप्नों की बातें परस्पर सुनाने लगे, किन्तु स्वप्न का कारण कोई नहीं बता सका।

उसी स्वप्न का कारण बताने और फल देने के लिए ही मानों प्रभु ने उस दिन भिक्षा के लिए नगर में प्रवेश किया। नगर वासियों ने एक वर्ष तक निराहार रहते हुए भी प्रभु को वृषभ गति से सानन्द आते हुए देखा।

नगर वासियों ने ज्योंही प्रभु को आते देखा वे दौड़कर उसी प्रकार निकट गए जिस प्रकार लोग अपने विदेशागत बन्धु को आते देखकर जाते हैं। उनमें से एक ने कहा—"प्रभु, आप मेरे घर पधारने का अनुग्रह करें कारण बसन्त ऋतु की भाँति बहुत दिनों बाद आपके दर्शन हुए हैं।" दूसरा बोला—"हे स्वामी, स्नान का जल विलेपन तेलादि और परिधान वस्त्र प्रस्तुत है, आप स्नान कर वस्त्र परिधान करें।" तीसरे ने कहा—"हे भगवन्, मेरे घर उत्तम केशर, कस्तूरी, कर्पूर, चन्दन है उनका व्यवहार कर आप मुझे कृतार्थ करें।" चौथा बोला—"हे जगदभूषण, दया कर आप मेरे वस्त्रालंकार को आपकी देह पर धारण कर उन्हें अलंकृत करें।" पाँचवें ने कहा—"हे स्वामिन्, आप मेरे घर पधारें। आपके शरीर के अनुकूल पट्ट वस्त्र धारण कर उन्हें पवित्र करें।" कोई बोला—"हे देव, मेरी कन्या देवांगना-सी सुन्दर है, आप उसे ग्रहण करें। आपके आगमन से हम धन्य हो गए हैं।" अन्य किसी ने कहा—"हे राज कुंजर, आप क्यों पैदल चल रहे हैं? मेरे उस पर्वत तुल्य हाथी पर आरोहण कीजिए।" कोई और बोला—"सूर्याश्व के समान मेरे अश्व को स्वीकार करिए। हमारा आतिथ्य स्वीकार न कर आप क्यों हमें अयोग्य प्रतिपादित कर रहे हैं?" किसी ने कहा—"इस रथ में उत्तम जाति के अश्व जुते हैं आप इसे स्वीकार कीजिए। आप इस रथ पर नहीं चढ़ेंगे तो यह किस काम आएगा?" कोई कहता—"हे प्रभु, इन पके फलों को ग्रहण करिए।" किसी ने कहा—"हे एकान्त वत्सल, आप इन ताम्बूल पत्रों को प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करिए।" कुछ बोले प्रभु—"हमने कौन-सा अपराध किया है जिसके कारण आप न कुछ सुनते हैं न बोलते हैं?"

इस प्रकार लोग उनसे प्रार्थना करने लगे—किन्तु किसी की भी प्रदत वस्तु ग्रहण योग्य न समझकर प्रभु उसी प्रकार घर-घर विचरण करने लगे जैसे चन्द्र एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र पर भ्रमण करता है। प्रभात के समय जिस प्रकार पक्षियों का कोलाहल सुना जाता है उसी प्रकार श्रेयांस कुमार ने घर बैठे ही नगर वासियों का कोलाहल सुना। यह कोलाहल क्यों हो रहा है यह जानने के लिए उन्होंने अपने अनुचर को भेजा। अनुचर गया और समस्त वृतान्त विदित कर करबद्ध होकर बोला—

"राजाओं की भाँति जिनकी पाद पीठिका के सम्मुख अपने मुकुट से धरती स्पर्श करते हुए इन्द्रादि देवता दृढ़ भक्ति से भू-लुण्ठित होते हैं, सूर्य जिस प्रकार समस्त वस्तु को प्रकाशित करता है उसी प्रकार जिन्होंने इस लोक पर दया कर आजीविका के साधन रूप कर्मों का निर्देश किया है, दीक्षा लेने की इच्छा से जिन्होंने भरतादि और आपको भुक्तावशिष्ट अन्न की तरह यह भूमि दान की है, जिन्होंने समस्त सावद्य वस्तुओं का त्याग कर अष्ट कर्म रूप महापंक को शुष्क करने के लिए ग्रीष्मकालीन रौद्र की भाँति-तप स्वीकार किया है, क्षुधार्त तृषार्त वे ही प्रभु ऋषभदेव ममत्वहीन बने अपने पैरों से भूमि को पवित्र करते हुए विहार कर रहे हैं। वे न तो रौद्रताप से आकुल होते हैं न छाया से आनन्दित। वे तो पर्वत की भाँति दोनों में ही समभावी रहते हैं। वज्र शरीर की तरह वे न तो शीत से विरक्त होते हैं न ग्रीष्म पर आसक्त। इसी तरह वे इधर-उधर भ्रमण कर रहे हैं। संसार रूपी हस्ती के लिए केशरी तुल्य प्रभु युग मात्र अर्थात् चार हाथ प्रमाण दृष्टि रखकर किसी चींटी को भी जिससे कष्ट न हो इस प्रकार पग धरते हुए चलते हैं। आपको आज्ञा देने में समर्थ त्रिलोकनाथ आपके पितामह सौभाग्य से ही यहाँ पधारे हैं। गोपाल के पीछे जैसे गाएँ दौड़ती हैं उसी प्रकार प्रभु के पीछे समस्त नगरवासीगण दौड़ रहे हैं। यह उनका ही मधुर कोलाहल है।"

प्रभु के आगमन का संवाद सुनते ही युवराज श्रेयांस पदगमनकारियों को पीछे करते हुए दौड़कर वहाँ गए। युवराज को छत्र और पादुका रहित दौड़ते हुए देखकर उनकी सभा के परिषद्गण भी छत्र और पादुका का परित्याग कर उनके पीछे दौड़ने लगे। द्रुतगति से दौड़ते हुए युवराज श्रेयांस के कर्ण कुण्डल इस प्रकार हिल रहे थे मानों युवराज पुनः प्रभु के सम्मुख, बाल क्रीड़ा कर रहे हों। अपने गृहांगन में प्रभु को आते देख वे प्रभु के चरण कमलों पर गिर पड़े और भ्रमर भ्रम उत्पन्नकारी निज केशों से प्रभु के चरणों को मार्जित कर दिया। फिर उठकर प्रभु को तीन प्रदक्षिणा दी एवं आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्रों से उनके चरणों में पुनः वन्दन किया। गिरते हुए अश्रु ऐसे प्रतीत होते थे मानों वे प्रभु चरणों को धो रहे हों। फिर खड़े होकर वे प्रभु के मुख कमल को इस प्रकार देखने लगे जैसे चकोर पूर्णिमा के चाँद को देखता है। उन्हें लगा ऐसा वेश मैंने पहले भी कहीं देखा है। ऐसा सोचते-सोचते उन्हें विवेक वृक्ष के बीज की भाँति जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। तब उन्हें ज्ञात हुआ कि पूर्व जन्म में पूर्व विदेह क्षेत्र में जब प्रभु वज्रनाभ नामक चक्रवर्ती थे मैं उनका सारथी था। उस जन्म में प्रभु के वज्रसेन नामक पिता थे। उन्हें

मैंने इसी प्रकार तीर्थंकर चिह्नयुक्त देखा था। वज्रनाभ ने वज्रसेन तीर्थंकर से दीक्षा ग्रहण की थी। उस समय मैं भी उनके साथ दीक्षित हो गया था। उसी समय मैंने वज्रसेन तीर्थंकर के मुख से सुना था कि वज्रनाभ भरतखण्ड के प्रथम तीर्थंकर होंगे। स्वयंप्रभादि जन्म में भी मैं उनके साथ था। इस समय वे मेरे प्रपितामह हैं। भाग्योदय से ही मुझे आज इनके दर्शन हुए हैं। ये प्रभु ही तो साक्षात् मोक्ष हैं जो कि इस रूप में समस्त पृथ्वी पर व मुझपर कृपा करने यहाँ आए हैं। कुमार जब इस प्रकार चिन्तन कर रहे थे उसी समय कोई व्यक्ति आया और बड़ी प्रसन्नतापूर्वक उन्हें नवीन इक्षुरस पूर्ण कलश उपहार रूप में दिए। जाति स्मरण ज्ञान से निर्दोष भिक्षा देने की विधि जानने वाले श्रेयांस कुमार ने प्रभु से प्रार्थना की—"हे भगवन्, इस कल्पनीय इक्षुरस को स्वीकार कीजिए। तभी प्रभु ने भी अंजलि रुपी हस्तपात्र उनके सम्मुख फैला दिए। श्रेयांस कुमार इक्षुरस भरे उन कलशों से प्रभु की अंजलि में रस ढालने लगे। प्रभु ने अपनी अंजलि में बहुत सा रस ग्रहण किया किन्तु कुमार का हृदय उतने से सन्तुष्ट नहीं हुआ। स्वामी की अंजलि में रस इस प्रकार स्थिर हुआ मानों उसकी शिखा आकाश स्पर्श करने के लिए जम गयी हो। तीर्थंकरों का तो प्रभाव ही अचिन्त्य होता है। प्रभु ने उस रस से पारन किया और सुर-असुर मनुष्यों के नेत्रों ने उनके दर्शन रूपी अमृत का पान किया। उसी समय श्रेयांस के कल्याण को प्रसिद्ध करने वाली चारण रूप आकाश में प्रतिध्वनि से वृद्धि प्राप्त दुन्दुभि जोर-जोर से बजने लगी। मनुष्यों के नेत्रों से पतित आनन्दाश्रुओं के साथ-साथ देवतागण आकाश से रत्न वर्षा करने लगे। ऐसा लगा मानों प्रभु के चरणों से पवित्र पृथ्वी की पूजा करने के लिए वे पंचरंगी पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं। समस्त फूलों के समूह से संचित सुगन्ध-से गन्धोदक की देवताओं ने वृष्टि की। आकाश को विचित्र मेघों से चित्रित करने के लिए मानों देवता और मनुष्य उज्ज्वल वस्त्र ऊपर की ओर उत्क्षिप्त करने लगे। वैशाख शुक्ला तृतीया को दिया गया यह दान अक्षय हुआ और वह दिन अक्षय तृतीया के नाम से आज भी प्रचलित है। संसार में दान धर्म श्रेयांस कुमार से एवं अन्य समस्त व्यवहार भगवान ऋषभ नाथ द्वारा प्रारम्भ हुए।

भगवान ने पारणा किया इससे देवताओं ने जो रत्नादि की वर्षा की उसे देखकर नगरवासी आश्चर्य चकित हो श्रेयांस कुमार के प्रासाद की ओर आने लगे। कच्छ और महाकच्छ आदि क्षत्रिय तपस्वी भी भगवान के आहार ग्रहण का संवाद पाकर बहुत प्रसन्न हुए और वहाँ आए। राजा, नागरिक

और जनपदवासियों की देह रोमांचित हो उठी। वे आनन्दित होकर श्रेयांस कुमार से बोले—"हे कुमार, आप धन्य हैं, कारण प्रभु ने आप द्वारा प्रदत्त इक्षुरस ग्रहण किया। किन्तु हमने उन्हें सब कुछ देना चाहा फिर भी उन्होंने कोई भी वस्तु ग्रहण नहीं की। सब उन्हें तृणवत लगा। वे हम पर प्रसन्न नहीं हुए। प्रभु ने एक वर्ष पर्यन्त ग्राम नगर आकर और अरण्य में प्रव्रजन किया लेकिन हममें से किसी का भी आतिथ्य स्वीकार नहीं किया। अतः भक्त होने का अभिमान रखने वाले हम सब को धिक्कार है। हमारे घर विश्राम करना और हमारा द्रव्य ग्रहण करना तो दूर आज तक उन्होंने हमें सम्भाषित करने जैसी सामान्य-सी मर्यादा भी नहीं दी। जिन्होंने लक्ष-लक्ष पूर्व तक हमारा पालन किया वे ही प्रभु आज हमारे साथ अपरिचित व्यक्ति-सा व्यवहार करते हैं।"

श्रेयांस कुमार बोले—"आपलोग इस प्रकार क्यों बोल रहे हैं? अब ये पूर्व के परिग्रहधारी राजा नहीं हैं। ये तो अब संसार भँवर से बाहर आने के लिए समस्त सावद्य कर्मों का परित्याग कर यति बन गए हैं। जो भोगाकांक्षा रखते हैं वे स्नान, विलेपन, वसन-भूषण स्वीकार करते हैं किन्तु रागहीन प्रभु को उन वस्तुओं से क्या प्रयोजन? जो कामादि के वशीभूत होते हैं वे कन्या स्वीकार करते हैं इन कामजीत प्रभु के लिए तो कामिनियाँ पाषाण तुल्य हैं। जिन्हें भूमि की कामना होती है वे हस्ती, अश्व आदि स्वीकार करते हैं किन्तु संयम रूप साम्राज्य को ग्रहण करने वाले प्रभु के लिए तो ये समस्त विषय दग्ध वस्त्र की भाँति हैं। जो हिंसक होते हैं वे सजीव फलादि ग्रहण करते हैं लेकिन करुणामय प्रभु तो सभी जीवों को अभयदान देने वाले हैं। ये तो केवल ऐषणीय, कल्पनीय और प्रासुक आहार ही ग्रहण करते हैं। आपलोग यह सब बात नहीं जानते।"

वे बोले—"हे युवराज, जो शिल्पादि आज प्रयुक्त हो रहे हैं उनका ज्ञान तो प्रभु ने हमें पहले ही दे दिया इसलिए उन्हें सब जानते हैं लेकिन आपने जो कुछ बताया वह तो प्रभु ने हमें कभी नहीं बताया। तभी तो हम यह सब कुछ नहीं जानते। लेकिन आपने यह सब कैसे जाना? आप वह कहने में समर्थ हैं, कृपया हमें बतलाइए।"

युवराज बोले—"ग्रन्थ पढ़ने से जैसे बुद्धि उत्पन्न होती है उसी प्रकार प्रभु को देखने मात्र से मुझे जाति स्मरण ज्ञान हो गया। सेवक जिस प्रकार प्रभु के साथ एक ग्राम से दूसरे ग्राम जाता है उसी प्रकार मैंने भी प्रभु के साथ आठ जन्म व्यतीत किए हैं। इस जन्म के पूर्व द्वितीय जन्म में

विदेह भूमि में प्रभु के पिता वज्रसेन नामक तीर्थंकर थे। प्रभु ने उनसे दीक्षा ग्रहण की थी, मैंने भी उसी समय दीक्षा ग्रहण कर ली थी। उस जन्म का स्मरण होने से मैं समस्त बातें जान सका हूँ। गत रात्रि में मैंने, मेरे पिता और सुबुद्धि श्रेष्ठी ने जो स्वप्न देखा था उसका प्रत्यक्ष फल प्राप्त किया। मैंने स्वप्न में कृष्ण वर्ण मेरु को दुग्ध द्वारा धोकर उज्ज्वल किया था। उसी के फलस्वरूप तपस्या द्वारा दुबले बने प्रभु को इक्षुरस से पारना करवा कर इनकी शोभा को वर्द्धित किया है। मेरे पिता ने शत्रु के साथ जिन्हें युद्ध करते देखा वे ये प्रभु ही थे। प्रभु ने मेरे द्वारा कराए गए पारने की सहायता से परिषह रूपी शत्रु को पराजित कर दिया है। सुबुद्धि श्रेष्ठी ने स्वप्न देखा था सूर्य मण्डल से पतित होती सहस्र किरणों को मैंने पुनः संस्थापित कर दिया था जिससे सूर्य और अधिक जाज्वल्यमान हो गया। प्रभु सूर्य के ही समान हैं। अनाहारी रहने पर सूर्य-सा केवल ज्ञान नष्ट हो जाता। प्रभु को पारना करवाकर आज मैंने इन्हें कैवल्य लाभ के पथ पर संस्थापित कर दिया है। इससे भगवान और अधिक प्रदीप्त हो उठे हैं।" श्रेयांस के कथन को सुनकर सभी ने उन्हें धन्य-धन्य कहा और अपने-अपने घर को लौट गए।

श्रेयांस के घर पारना कर प्रभु वहाँ से अन्यत्र विहार कर गए। कारण छद्मस्थ तीर्थंकर एक स्थान पर कभी नहीं रहते। भगवान ने जिस स्थान पर पारना किया उसे कोई उल्लंघन न करे इसलिए वहाँ श्रेयांस कुमार ने एक रत्नमय पीठिका बनवा दी और उस रत्नमय पीठिका को साक्षात् प्रभु के चरण समझकर भक्तिभाव से उसकी त्रिकाल वन्दना पूजा करने लगे। यदि लोग पूछते—'क्या है' तो वे उत्तर देते—'यह आदिकर्त्ता का मण्डल है।' तत्पश्चात् प्रभु जहाँ-जहाँ भिक्षा ग्रहण करते वहाँ-वहाँ ऐसी पीठिकाएँ प्रस्तुत करवाते। इसी से क्रमशः 'आदित्य पीठ' उपासना प्रचलित हो गयी।

[क्रमशः

धातुमय जैन प्रतिमाएँ

श्री भँवरलाल नाहटा

[पूर्वानुवृत्ति]

शंकरदान नाहटा कला भवन

हमारे इस कलाभवन में जैन जैनेतर अनेक धातुमय प्रतिमाओं का संग्रह है जिनमें दो जिन प्रतिमाएँ प्राचीन और कलापूर्ण हैं।

१ **पार्श्वनाथ त्रितीर्थी**—यह सपरिकर प्रतिमा सं० १०२१ की क्लिपत्य कूप चैत्य की गोष्ठी द्वारा निर्मापित स्नात्र प्रतिमा है। इसके पृष्ठ भाग में लिखे कुटिल लिपि के लेख से यह स्पष्ट है। इसमें उभय पक्ष में अवस्थित काउसग्ग मुद्रा वाली प्रतिमाएँ धोती पहनी हुई हैं और वे पब्बासन के नीचे से निकले हुये कमलासन पर खड़ी हैं। उभय पक्ष में एक ओर साँप पर पद्मावती और दूसरी ओर गजारूढ़ देवी है। सिंहासन के मध्य में भी एक व्यक्ति विराजित है। निम्न भाग में नौ ग्रह और उनके उभय पक्ष में सिंहासन के पायों में से निकले हुये कमलासन पर दाहिनी ओर गजारूढ़ यक्ष और वाम पार्श्व में सिंहवाहिनी अम्बिका है जिसकी गोद में बालक परिलक्षित है। काउसग्गियों के आसन से फिर प्रतिशाखा निकलकर दोनों ओर अपने दोनों हाथों में वस्त्र धारण किये पुरुष बैठे हैं। प्रतिमा के सप्त फण का अर्द्ध भाग खण्डित हो जाने से दूसरे पीतल के सप्त फण बना कर जोड़ दिये गये हैं। नेत्र चाँदी की मीनाकारी या रत्न जटित रहे होंगे जिन्हें निकाल डाला गया है अतः गढ़े मात्र रह गये हैं। नीचे वाले पायों पर भी सिंह खड़े हैं और मध्य भाग में एक व्यक्ति की मूर्ति है।

२ **सपरिकर इकतीर्थी**—जिनेश्वर भगवान के ऊपर छत्र व पृष्ठ भाग में प्रभामण्डल फूल की पंखुड़ियों वाला है जिसके आगे पट्टिका के सहारे भगवान विराजित हैं। उभय पक्ष में चामरधारी व ऊपर वस्त्र लिये किन्नर व नीचे दोनों ओर यक्ष व अम्बिका है। पब्बासन व प्रतिमा के हाथ जर्जरित होकर लुप्त हो गये हैं। इस पर "संवत ११३० ज्येष्ठ सु० १० सांति स प्र० बारिता" अभिलेख है।

श्री मोतीचंद खजानची संग्रह

इनके संग्रह में दो चौबीसियाँ हैं जिनमें से एक सं० १२३१ की है जिसके

परिकर के ऊपरी भाग में २१ प्रतिमाएँ सेमीसर्कल में हैं। मूलनायक भगवान के दोनों ओर कायोत्सर्ग मुद्रावस्थित जिन हैं। मूलनायक भगवान के नेत्रों में रजत पूरित है। परिकर के दोनों ओर अम्बिका व यक्ष है। सिंहासन पर सिंह युगल व मध्य में कोई देव है। परिकर के निम्न कोने में दो व्यक्ति खड़े हैं जिन पर घास बना हुआ है।

दूसरी प्रतिमा सं० ११७६ का चतुर्विंशति पट्टक है जो सुन्दर कलापूर्ण व भिन्न अलंकारिक शैली का है। इनके संग्रह में एक चन्दवा सं० १५१७ का है जिस पर जरी का काम है।

श्री चिन्तामणिजी का मन्दिर

बीकानेर के सर्वप्राचीन श्री चिन्तामणि जी (चौबीसटा) के मन्दिर में धातु प्रतिमाओं का विशाल संग्रह है। एक ही मंदिर में इतनी प्रतिमाएं सारे भारत में कहीं नहीं है। यहाँ इस समय १११६ प्रतिमाएँ हैं जिन में १०५० प्रतिमाएँ सं० १६३३ में तुरसमखान द्वारा सीरोही की लूट में फतहपुर सिकरी लाई गई थी। पांच छः वर्ष पश्चात् सं० १६३६ आ० सु० ११ को राजा रायसिंह और मंत्री कर्मचन्द बच्छावत उन्हें अकबर से प्राप्त कर बीकानेर लाये। वासुपूज्य स्वामी की मूलनायक प्रतिमा के साथ कई वर्ष पूजी जाकर अधिकांश प्रतिमाएँ चिन्तामणिजी के भूमिगृह में रख दी गई थीं। सं० १९८७, १९९५, २०००, २०१८ में बाहर निकाली गई थीं। हमने सर्वप्रथम इनके अभिलेख संग्रहित कर अपने "बीकानेर जैन लेख संग्रह" में प्रकाशित किऐ थे परन्तु तत्र स्थित प्रतिमाओं का कलात्मक अध्ययन नहीं हो सका था। थोड़ी सी कलापूर्ण प्रतिमा समूह का चित्र उपर्युक्त ग्रंथ में दिया गया था। सं० २०३३ के जून महीने में जब उन्हें पुनः निकाला गया तो राजस्थान सरकार द्वारा श्री प्रकाशचंद्र भार्गव को सूची निर्माण हेतु नियुक्त किया गया। उन्होंने अध्ययनपूर्वक जो लेख लिखा, जैन यति गुरुकुल स्मारिका से यहाँ साभार उद्धृत किया जा रहा है।

इस समय भण्डारस्थ प्रतिमाओं की संख्या १११६ है जिनमें २ पाषाण की एवं ८ धातुयंत्र हैं। काल क्रमानुसार देखा जाय तो ७ वीं शती की ३, ७-८ वीं की १, ८ वीं की १, ९ वीं की २, ९-१० वीं की २, १० वीं की ६, ११ वीं की ९, १२ वीं की ३३, १३ वीं की १११, १४ वीं की ३५८, १५ वीं की ५३३, १६ वीं की २४, १७ वीं की १, १८ वीं की ६, १८-१९ वीं की ४, १९ वीं की २ प्रतिमाएँ हैं। इनमें से कुछ प्रमुख प्रतिमाओं का वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

१ आदिनाथ प्रतिमा (प्रतिमा संख्या १)

यह २१ से० मी × ३३ से० मी० माप की आदिनाथ प्रतिमा पद्मासन ध्यान में विकसित पूर्णदल कमल पर सज्जायुक्त वस्त्रालंकृत उच्च सिंहासन पर विराजमान है। वस्त्र में गोल-गोल घेरे के अन्दर कमल पुष्प का अंकन है। सिंहासन में उच्च पीठिका के ऊपर मध्य में दो मृगों के मध्य धर्म चक्र का अंकन एक विकसित कमल के ऊपर किया गया है, पीठिका पर तीर्थंकर के लांछन का अभाव ध्यान देने योग्य है।

श्री आदिनाथ के कन्धे पर उनके बाल बिखरे हुए हैं। उन्नत ललाट, लंबी नासिका व चौड़े नथुने युक्त गोल भरा चेहरा है जिससे सौम्यता झलकती है। आँखें बड़ी-बड़ी हैं। ओठ पतले हैं पर नीचे का ओठ मोटा है। शरीर में भारीपन है। पीठिका के अग्र भाग का दाहिना पैर टूटा हुआ है। इस प्रतिमा के दोनों तरफ यक्ष और यक्षिणी की प्रतिमा रही होगी क्योंकि उनके स्थित करने के लिए सुराख बने हैं। प्रतिमा के पीछे एक लाइन का छोटा-सा लेख है। इसका अध्ययन किया जा रहा है। कला शिल्प के आधार पर यह बसन्तगढ़ से प्राप्त ऋषभनाथ जी की प्रतिमा से काफी साम्य रखती है और ७वीं शती की जान पड़ती है।

मैंने इसके लेख को "ॐ सन्ति गणि" पढ़ा था और बीकानेर जैन लेख संग्रह में प्रकाशित किया था।

२ तीर्थंकर प्रतिमा (प्रतिमा संख्या २)

यह प्रतिमा २० सें० मी० × ७ सें० मी० की खड़ी हुई किसी पीठिका पर अवस्थित थी। यद्यपि अब पीठिका नहीं रही, हुक लगा हुआ है। अधोवस्त्र के चिह्न स्पष्टतः लक्षित हैं। चेहरा गोल भरा हुआ है। कला की दृष्टि से यह ७वीं शती की जान पड़ती है।

३ चतुर्मुख समवसरण (प्रतिमा संख्या ४)

यह २१ सें० मी०×१६ सें० मी० की चौकोर चौमुखी प्रतिमा है जिसकी प्रत्येक दिशा में दो स्तंभों के मध्य एक ध्यानस्थ तीर्थंकर प्रतिमा युक्त थी। अब केवल तीन दिशा में एक-एक प्रतिमा है, एक ओर की प्रतिमा नहीं है। ये प्रतिमाएं अस्थिर हैं। पूर्व में शिखर पर ध्वज था। तीर्थंकर प्रतिमाओं की पीठिका पर कुबेर एवं अंबिका अवस्थित है। ऊपर एक कोने पर एक हाथी का बड़ा ही मनोरम अंकन हुआ है। कला की दृष्टि से यह प्रतिमा ११वीं शती की जान पड़ती है।

४ श्री पार्श्वनाथ त्रितीर्थी (प्रतिमा संख्या १७)

यह २४ सें० मी०×१६ सें० मी० की है। पार्श्वनाथ तीर्थंकर एक सिंहासन पर ध्यानमुद्रा में बैठे हुए हैं। उनके पीछे पंचमुखी सर्प फण फैलाए बैठा है जिसने तीर्थंकर के ऊपर छत्र का रूप धारण कर लिया है। दोनों ओर बाजू में दो अन्य तीर्थंकर कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं। परिकर पर विद्याधरों का अंकन है। पीठिका पर कुबेर एवं अम्बिका का अंकन हुआ है। पीठिका पर अष्ट ग्रहों का भी अंकन हुआ है। एक बाजू में चक्रेश्वरी का अंकन है जब कि दूसरी ओर कोई अन्य देवी का अंकन था जो अब खंडित है। यह प्रतिमा ७वीं-८वीं शताब्दी की प्रतीत होती है।

५ सरस्वती देवी (प्रतिमा संख्या ६१)

यह १३.७ सें० मी० × ६.४ सें० मी० की द्विबाहु प्रतिमा समभंग अवस्था में खड़ी हुई अपने दाहिने हाथ में सनाल कमल लिये हुए है। बाँया हाथ नीचे लटक रहा है जिसमें एक पुस्तक धारण किए हुए है। मस्तक पर बाल संवार कर एक छोटा जूड़ा बना हुआ है, इसके आगे एक छोटा मुकुट पहन रखा है। पीछे का प्रभा मंडल खंडित है। प्रभा मंडल के नीचे के प्राप्य भाग से पता लगता है कि प्रभा मंडल दो कगार वाला था किन्तु अलंकरण विहीन था। सरस्वती प्रतिमा का चौड़ा ललाट, सीधी लम्बी नासिका, छोटे-मोटे ओठ, लम्बी आँखें और गोल भरा हुआ चेहरा बसन्तगढ़ की सरस्वती प्रतिमा की भाँति है। स्थानीय भक्तजनों ने प्रतिमा के नेत्रों में चाँदी भरकर प्रतिमा को कुरूप कर दिया है। देवी के कानों में गोल-गोल कुंडल हैं जो कंधों को छू रहे हैं। गले में मणियुक्त एकावली एवं उरह-सूत्र धारण किये हैं जो उन्नत पयोधरों के मध्य से होता हुआ बाँयी ओर गया है। नीचे का वस्त्र बसंतगढ़ की सरस्वती प्रतिमा की भाँति धारण करा है जिसमें दोनों पैरों के मध्य एक लहरदार वस्त्र है। उत्तरीय दोनों कंधों पर से होता हुआ एड़ी तक दो शिखाओं में चला गया है। प्रतिमा के दाहिनी ओर का उत्तरीय खंडित है। किन्तु इसका खंडित भाग कंधे एवं एड़ी के पास दृष्टिगोचर होता है। देवी के हाथों में भुजबन्द एवं कंगन तथा पैरों में पायल है।

इस धातु सरस्वती प्रतिमा का बसन्तगढ़ की धातु सरस्वती प्रतिमा से काफी साम्य है और धोती बसंतगढ़ तीर्थंकरों की भाँति है। कला एवं मूर्त्ति विकास की दृष्टि से यह प्रतिमा ८वीं शती की है और पश्चिमी भारतीय कला के प्रथम चरण की है।

६ जैन तीर्थंकर (प्रतिमा संख्या ६४)

चिन्तामणि जी के मन्दिर के सभामण्डप में ४७×१४ सें० मी० की खड़ी प्रतिमा चिरकाल से थी जो अब सुरक्षित स्थान में है। इसके १० से० मी० की नव्यपीठिका लगा दी है। यह प्रतिमा उत्तरी राजस्थान की प्रतिमाओं में काफी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह बसंतगढ़ पिण्डवाड़ा से प्राप्त दो खड़ी प्रतिमाओं से काफी साम्य रखती है। यह प्रतिमा संभवतः तुरसमखान द्वारा सीरोही से लूट के लाई हुई होगी। प्रतिमा पर लांछन न होने से यह प्रतिमा किस तीर्थंकर की है, निश्चयपूर्वक कहना कठिन है।

इस प्रतिमा के कायोत्सर्ग मुद्रा और धोती पहनने का ढंग बसंतगढ़ पिण्डवाड़ा से बिलकुल साम्य रखता है। उन्नत ललाट, लम्बी नासिका, चौड़े नथुने और गोल भरा हुआ चेहरा है, आँखें लम्बी एवं बड़ी हैं। घुंघराले बाल एवं उष्णीश युक्त यह प्रतिमा काफी सुन्दर है फिर भी गुप्तकालीन प्रतिमा जैसा ओज नहीं है। इस प्रतिमा के हाथ लम्बे हैं जिन्हें आजानुबाहु कहा जाता है जो महापुरुषों के लक्षण में आता है। तीर्थंकर के कर्ण भी लम्बे दर्शाए गए हैं, जो कि महापुरुषों के चिह्न हैं। ओठ छोटे हैं। स्थानीय भक्तों ने नकली नेत्र व नीचे लौह पीठिका भी लगा दी है।

बसन्तगढ़ से प्राप्त प्रतिमा शिल्पी शिवनाग के सं० ७४४ (६८७ ई०वी) के लेख से पता लगता है कि उसने दो प्रतिमाएँ बनाई थीं। डा० उमाकान्त प्रेमानंद शाह ने वहीं से प्राप्त दोनों प्रतिमाओं को शिवनाग रचित माना है। इस प्रतिमा को भी समकालीन मानना उचित होगा क्योंकि इसका शिल्प एकदम उसी प्रकार का है।

चिन्तामणि जी के मन्दिर के मूलनायक श्री आदिनाथ चतुर्विंशति पट्टक भी दादा श्री जिनकुशलसूरि जी द्वारा प्रतिष्ठित और मण्डोवर के मूलनायक रूप में थी जिसे बच्छावतों के आदि पुरुष बोथरा बच्छराज जोधपुर से साथ लाये थे। मन्दिर की प्रतिष्ठा का अभिलेख सही है क्योंकि कामरां द्वारा बीकानेर पर अधिकार कर परिकर भग्न कर देने और सं० १५१२ में उसका जीर्णोद्धार का उल्लेख मूलनायक के परिकर के अभिलेख में होने से बीकाजी के राज्यकाल में प्रतिष्ठित होना निर्विवाद है। केवल बीकाजी को राजा की पदवी नहीं थी। वह राजा की पदवी रायसिंह को मुगलसम्राट ने दी इससे मन्दिर की प्राचीनता को नकारा नहीं जा सकता। अपने राज्य में महाराजा राजा उपाधि हर कोई लिखते थे इस विषय में ग्रंथों की प्रशस्ति आदि से भी प्रमाणित किया जा सकता है। अस्तु।

इसी मन्दिर के परकोटे में स्थित शांतिनाथ जिनालय के मूलनायक पार्श्वनाथ की धातु प्रतिमा सं० १५४६ में श्री जिनसमुद्रसूरि जी द्वारा प्रतिष्ठित है। सं० १५८० में हेमविमल सूरि प्रतिष्ठित धातुमय यंत्रपट में शत्रुंजय, आबू, गिरनार, नवपद, समवसरण, चौबीसी, बीसविहरमानादि उत्कीर्णित है।

श्री महावीर स्वामी का मन्दिर (बैदों का)

इस मन्दिर में भी सैकड़ों धातु प्रतिमाएँ भण्डार में हैं जिसके पूरे लेखों के संग्रह व अध्ययन की महती आवश्यकता है। सं० १५३४ की सीमंधर प्रतिमा, सं० १५३१ का कलिकुण्ड यंत्र, सर्वतोभद्र यंत्र, दुरितारिविजय यंत्र, षोडशकरण यंत्र (सं० १६६३ दि० रत्नकीर्त्ति उपदेश से), ह्रींकार यंत्र (सं० १५६६ रूद्रपल्लीय गच्छ प्र०), अष्टांग सम्यग्दर्शन यंत्र आदि कितने ही धातुमय कलात्मक उपादानों के साथ सं० १५२७ में भ० भुवनकीर्त्ति प्रतिष्ठित विशाल प्रतिमा सं० १७२७ उदयपुर में श्री सुमतिसागर सूरि के उपदेश से बना सिंहासन भी यहाँ है जिसे सूत्रधार गणेश और कंसारामान जी के पुत्र परताप ने बनाया है। अम्बिका देवी की तीन प्रतिमाएँ सं० १३५१, १३५५, १३८१ और १४६६ की प्रतिष्ठित है। चांदी की चक्रेश्वरी देवी व नवपद यंत्रादि धातु की अनेक वस्तुएँ हैं।

श्री अजितनाथ जिनालय

यहाँ सं० १५२३ में मन्त्रीदलीय श्रावक द्वारा निर्मापित और जिनहर्ष सूरि द्वारा प्रतिष्ठित गौतम स्वामी प्रतिमा कुरुजांगल देश के सपादों नगर में सं० १६८८ में निर्मित पीठ पर ऊँची चौकी पर गुरु महाराज दोनों पांव नीचे किए बैठे हैं। इसके अभिलेख में दिगम्बर साधु-साध्वियों के नाम व निर्माता का नाम भी है।

श्री चन्द्रप्रभ जिनालय

यहाँ अन्य धातु प्रतिमाओं के स थ अष्टदल कमलाकृति प्रतिमा सीरोही में निर्मित स्व० श्री जिनचंद्रसूरि जी द्वारा प्रतिष्ठित है। चांदी की दो प्रतिमाओं में एक सं० १७६४ की सोनीपाहरू द्वारा निर्मित व दूसरी सं० १५५६ की है।

श्री सुपार्श्वनाथ मंदिर

यहाँ सं० १७६४ के चौमुखजी, सं० १५१६ की रजतमय सपरिकर नेमिनाथ प्रतिमा व सं० १५८१ का कलिकुंड यंत्रादि है।

| क्रमशः

ललितांग देव

[जैन कथानक]

अचानक मैं इस प्रकार उठ बैठा मानो नींद टूट गयी हो। कुछ समझ में नहीं आया कि यह दिन है या रात्रि। कारण मणिदीप के एक तरल आलोक ने उस कक्ष को उद्भासित कर रखा था। जिस शय्या पर मैं उठ बैठा था वह थी दुग्ध फेन-सी श्वेत एवं उसके ऊपर था गंगा प्रवाह-सा स्वच्छ दुकुल वितान। ज्योंही मैंने स्वयं को देखा तो चौंक उठा। मेरी भुजाओं में थे अंगद, कानों में कुण्डल, मस्तक पर मुकुट, गले में हार और पारिजात पुष्पों की अम्लान कुसुममाल। यौवन से परिपूर्ण थी मेरी देह। कुछ सोच सकूँ उसके पूर्व ही वीणा की मधुर ध्वनि सुनायी पड़ने लगी। वह ध्वनि कहाँ से आ रही थी समझ नहीं सका। ऐसी मधुर ध्वनि तो मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी। तभी सुनायी पड़ी स्त्री स्वर में जय व जियो ध्वनि। सोचने लगा—क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ या यह इन्द्रजाल है या माया? सहसा कुट्टिमतल मंजरित हो उठा कइयों के नूपुरों की रूनझुन से। किन्तु मैं किसी को भी देख नहीं पा रहा था। केवल उनके देह की पद्मगन्ध प्रवाहित होकर आ रही थी मेरी नासिका में। शरद् पूर्णिमा के कौमुदी प्रकाश की भाँति एक आनन्द ज्योत्सना मेरे चारों ओर खेल रही थी। प्रथम प्रणय के आविर्भाव की तरह एक अनास्वादित सिहरन शिरीष कुसुम की कोमलता लिए मुझे आवेष्टित कर रही थी। मैं कहाँ आ गया? यह सत्य है या भ्रम? यह दिव्य आलोक? यह दिव्य परिवेश? यह दिव्य मधुरिमा···?

सहसा किसी के कण्ठ स्वरों को सुनकर मेरा चिन्ताजाल छिन्न हो गया। देखा—दिव्य क्षौम वस्त्र पहने हुए एक सुन्दर पुरुष हाथ जोड़े मुझे प्रणाम कर रहा है—'देव, आज आप जैसा स्वामी प्राप्त कर हम सनाथ हुए, धन्य हुए। आप हम पर कृपावारि वर्षण करें। देव, यह ईशान नामक द्वितीय देवलोक का श्रीप्रभ विमान है। आप इस विमान के अधीश्वर है। मेघ में जैसे विद्युत उत्पन्न होती है आप भी उसी प्रकार इस विमान में उत्पन्न हुए हैं। यह विमान समस्त इच्छित वस्तुओं को देने वाला एवं अविनाशी श्री सम्पन्न और सुखप्रद है। आपका नाम है ललितांग देव और ये हैं आपकी सभा के अलंकार तुल्य सामानिक देवगण। आप एक होकर भी इनके लिए अनेक

रूपों में प्रतिभासित हो रहे हैं। ये सब आपकी आज्ञा पालन को सर्वथा प्रस्तुत हैं, इन्हें समयोचित आदेश दें।'

उसके कथन के साथ-साथ सामानिक देवताओं के अवयव परिस्फुट होने लगे। वे भी मेरी तरह ही थे केयूर अंगद और मुकुटधारी। यदि वे हाथ जोड़कर खड़े नहीं होते तो लगता जैसे दर्पण में प्रतिबिम्बित मैं ही हूँ। मेरी तरह उनके गले में भी पारिजात पुष्पों की अम्लान माल्य थी और देह थी यौवन से परिपूर्ण। मेरी ही तरह उनके नेत्र निमेषहीन थे। जैसे-जैसे इन पर मेरी दृष्टि पड़ती गयी वैसे-वैसे दीपालोक में जिस प्रकार पथ-पार्श्वस्थ अट्टालिकाएँ प्रस्फुटित हो उठती हैं उसी प्रकार प्रस्फुटित हो उठे थे वे सब।

'देव, ये हैं आपके नर्म सचिव। आनन्द मंगल और लीला विलास की कथाएँ सुनाकर ये आपका मनोरंजन करेंगे।'

नर्म सचिव पर दृष्टि पड़ते ही मुझे जैसे कामन्दक स्मरण हो आया। कामन्दक मर्त्य जीवन में मेरा विदूषक था इसी के जैसा स्थूल और वर्तुलाकार। मर्त्य जीवन याद आते ही स्मृति पटल पर उभर पड़ा पश्चिम महाविदेह के गन्धिलावती विजय का वैताढ्य पर्वत स्थित गन्धसमृद्धि नगर। पूर्व जन्म में मैं वहाँ महाबल नामक गन्धर्वराज था। मेरी पत्नी थी विनयवती। पराक्रमी विद्याधरों की सहायता से इन्द्र की तरह राज्य करने पर भी मैं बहुत विलास प्रिय था। हंस जिस प्रकार कमलिनी खण्ड में हंसिनियों का समूह लेकर आनन्द क्रीड़ा करता है मैं उसी प्रकार सुन्दरी पुरललनाओं के साथ उद्यान वापी एवं पर्वत कन्दराओं में क्रीड़ा करता। आगे-पीछे आस-पास मनोहारिणी स्त्रियों से मैं इस प्रकार घिरा रहता मानों मैं मूर्त्तिमान शृंगार ही हूँ। मेरे विलासी होने के कारण सारा नगर भी विलासी हो उठा। प्रतिगृह से नूपुरों की जो रूनझुन ध्वनि उठती उसकी प्रतिध्वनि से वैताढ्य पर्वत इस प्रकार ध्वनित हो जाता मानो वैताढ्य पर्वत की सभी गिरि कन्दराएँ नृत्यमय हो गयी हों।

'देव, ये आपके शरीर रक्षक देवता हैं। ये सभी कवचधारी छत्तीस प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हैं। ये सभी स्वामी की रक्षा में तत्पर और चतुर हैं।'

'और ये हैं आपके नगर रक्षक लोकपाल देवता।'

'ये सब हैं सैन्य संचालन और व्यूह निर्माण में सुदक्ष सेनापति।'

मैं सुस्मितमुखी बना उन्हें देखता और सोचता रहा तब तो स्वर्ग में भी आततायियों के आक्रमण की आशंका है। स्वर्ग भी हिंसा, द्वेष और प्रतिस्पर्द्धा से मुक्त नहीं है।

'देव, ये आपके पुरवासी प्रकीर्णक देवता हैं जो आपकी सन्तान तुल्य है। ये आपके सामान्य आदेश को निर्माल्य की तरह मस्तक पर धारण करेंगे।'

'ये आभियोगिक देवता हैं। दास की भाँति ये आपकी सेवा करेंगे।'

'ये किल्विषक देवगण हैं। आपके सभी मलिन कर्म इनके द्वारा सम्पादित होंगे।'

मुझे लगा तब तो स्वर्ग में भी सब समान सुखी नहीं हैं। यहाँ भी मर्त्य की भाँति राजा-प्रजा, प्रभु-भृत्य, शासक और शासित का प्रभेद है।

'ये रहा आपका सर्वसुख प्रदानकारी अप्रतिम प्रासाद। इस प्रासाद के आभ्यंतर में हजार-हजार पुरललनाओं के साथ निवास करती हैं देवी स्वयंप्रभा। उनके साथ आप समस्त प्रकार के इन्द्रिय सुख भोग करेंगे।'

'ये सब हैं स्वर्ण कमलपूर्ण सरोवर।'

'यह है स्वच्छ सलिलवाही सुरसरिता।'

'ये हैं मणिमय क्रीड़ा पर्वत।'

'यह है अमलिन पारिजात पुष्प उद्यान।'

प्रतिहारी के वचनों के साथ-साथ वह अप्रतिम प्रासाद, पुरललनाओं सहित पीनोन्नतपयोधरा श्रोणीभारालसा देवी स्वयंप्रभा मेरे चक्षुओं के सम्मुख विकसित होने लगी। स्वर्ण कमलपूर्ण सरोवर, स्वच्छ सलिल सुर सरिता, अदृष्टपूर्व मणिमय क्रीड़ापर्वत, नेत्रों को आनन्दप्रद पारिजात पुष्प उद्यान जैसे मुझे इशारे से बुलाने लगे। कहाँ मृत्युलोक की मलिनता कहाँ श्रीप्रभ विमान का अपरूप सौन्दर्य! इस सौन्दर्य की कल्पना क्या मृत्युलोक का मानव कभी स्वप्न में भी कर सकेगा?

'देव, दिक् समूह को प्रकाश करने वाला सूर्यमण्डल-सा दीप्तिमय यह आपका सभा-मण्डप है।'

'ये हैं श्रीप्रभ विमान की वारांगनाएँ। ये चामर, मयूरपंख और दर्पण लिए आपकी सेवा में सदैव उपस्थित रहेंगी।'

'ये हैं गीतवाद्य निपुण गन्धर्व कन्याएँ। सुमधुर संगीत का परिवेशन कर ये सदा आपको आनन्द देंगी।'

उन वारांगनाओं के रूप लावण्य को देखकर तो मुझे मृत्युलोक की श्रेष्ठ सुन्दरियाँ अत्यन्त कुरूप लगीं। गन्धर्व कन्याओं के मुख से मधुर जय व जियो ध्वनि तो मैं पूर्व ही सुन चुका था। उनके मधुर कण्ठ की किससे तुलना

करूँ सोचकर भी नहीं सोच पाया। आम्र मंजरी का मकरन्द पान कर कोकिला जिस प्रकार मधुर कण्ठी हो जाती है लगा स्वर्ग का आसव पान कर ये भी इतनी मधुरकण्ठी हो गयी हैं। किन्तु मैं किसी भी प्रकार समझ नहीं सका कि इस कल्पना का स्वर्ग या स्वप्न का कल्पलोक श्रीप्रभ विमान में मैं कैसे पहुँच गया? ऐसा मैंने कौन-सा पुण्य किया था कि जिसके कारण श्रीप्रभ विमान में केवल मेरा प्रवेश ही नहीं हुआ यहाँ का अधीश्वर बनकर जन्मा हूँ। पहले ही कह आया हूँ कि मैं विलासी था। विलासी था तभी तो दिवस और रात्रि के अधिकांश भाग मैं प्रमदाओं के साथ विलास-व्यसन में व्यतीत करता था। धर्म-कर्म में मेरी रुचि नहीं थी। मैंने धर्म किया ही कहाँ कि जिसके फलस्वरूप इस स्वर्ग राज्य पर आसीन होता। किन्तु, स्वर्ग के प्रतिहारी भी मिथ्या नहीं बोलते। फिर यह भी तो मैं स्व नेत्रों से देख रहा हूँ कि सामानिक देवताओं से लेकर गन्धर्व कन्या पर्यन्त अंजलि बद्ध होकर मेरा आदेश ग्रहण करने के लिए अपेक्षा कर रही हैं। यह तो भ्रम नहीं है? तब क्या किसी भूल से मैं इस स्वर्ग में आ गया? किन्तु वह भी तो सम्भव नहीं है। कर्म के विधान में जरा-सी भी भूल नहीं होती। तभी मुझे बुद्धिसागर स्वयंबुद्ध स्मरण हो आया। स्वयंबुद्ध मेरा मंत्री था। उसी ने मुझे अल्पायु जानकर सदुपदेश द्वारा संयम में प्रतिष्ठित किया था। उसी के उपदेश से एक मास तक यति धर्म का पालन कर अनशन पूर्वक मैंने देह त्याग किया था। विषय-वासना से चित्त को हटाकर संयम धर्म पालन करने के फलस्वरूप मैंने इस श्रीप्रभ विमान का आधिपत्य प्राप्त किया है। मेरा मन स्वयंबुद्ध के प्रति कृतज्ञता से भर गया। स्वयंबुद्ध ही मेरा एकमात्र धर्म मित्र था। उसका ऋण मैं कभी नहीं चुका सकूँगा। यदि वह मुझे संयमधर्म में दीक्षित नहीं करता तो आज मैं यह स्वर्ग नहीं असह्य नारकीय यातना का भोग करता।

प्रतिहारी बोला—'देव, आपकी अभिषेक क्रिया सम्पन्न करने का समय हो गया है।'

मैं शय्या का परित्याग कर प्रतिहारी के साथ सभा-मण्डप में रखे सिंहासन पर जाकर बैठ गया। सामानिक देवगण भी यथा स्थान बैठ गए। वारांगनाएँ स्वर्णदण्ड चामर, मयूर पंख और दर्पण लेकर मेरे पार्श्व में अवस्थित हो गयीं और धीरे-धीरे चामर वीजने लगीं। पूर्णचन्द्र-सा धवल श्वेत छत्र मेरे मस्तक पर शोभित होने लगा। गन्धर्व कन्याएँ सुललित कण्ठ से मेरा प्रशस्ति गीत गाने लगीं। पुरोहित देवताओं ने आकर मेरे ललाट पर

कुंकुम तिलक अंकित कर मेरी अभिषेक क्रिया सम्पन्न की। अब मैं ललितांग देव के रूप में श्रीप्रभ विमान का एकछत्र अधिपति हो गया। एक-एक कर सभी देवताओं ने मेरा आनुगत्य स्वीकार किया।

इस अभिषेक के समय स्वयंप्रभा देवी की अनुपस्थिति ने मेरे मन को खिन्न कर दिया क्योंकि मर्त्यलोक में तो अभिषेक के समय सहधर्मिणी की उपस्थिति एकान्त आवश्यक मानी जाती है। अतः समस्त अनुष्ठान मुझे मन्त्रहीन यज्ञ की भाँति विवर्ण एवं नीरस-सा लगा। यह जैसे देवहीन देवमन्दिर-सा, प्राण-हीन शरीर-सा, चन्द्रिका-हीन चन्द्रबिम्ब-सा प्रतिष्ठाहीन हो गया था। या यह अनुष्ठान मात्र मुझे शोधन करने की प्रक्रिया मात्र रहा हो। इस शोधन ने मेरे मृत्युलोक के सभी सम्बन्धों को धो-पोंछकर मुझे स्वर्ग के उपयुक्त बना लिया ताकि मैं मर्त्य की धरती से चिर विदा लेकर कुंकुम गौरकान्ति वलयित ललाट लिए अब मेरी स्वयंप्रभा के सम्मुख उपस्थित हो सकूँ। देखा—मेरा समस्त मन उन्मत्त और बेसुध होकर उसी की ओर दौड़ पड़ा। मैं तुरन्त ही अन्तःपुर की ओर पैर बढ़ाने वाला था किन्तु सम्भल गया। जिस अर्हत् उपासना के कारण मुझे यह स्वर्ग राज्य मिला उनके प्रति अपनी श्रद्धा भक्ति प्रकट करना नितान्त प्रयोजनीय था। स्वयंबुद्ध यदि यहाँ उपस्थित होता तो मुझे यही उपदेश देता। अतः मैं वहाँ से उठकर शाश्वत जिन चैत्य में जिन प्रतिमा का दर्शन करने गया। विविध स्तोत्रों से उनकी स्तुति की, ज्ञान प्राप्ति के लिए दीप तुल्य ग्रन्थ पाठ किया और मण्डप के स्तम्भ में सुर-क्षित अर्हत् अस्थि की अर्चना की। फिर अन्तःपुर में प्रवेश के लिए प्रासाद की ओर अग्रसर हुआ।

प्रासाद के मुख्य तोरण पर उपस्थित होते न होते हाथ में स्वर्णवेत्र लिए अन्तःपुर की प्रतिहारिणियाँ मेरी ओर दौड़ी आयीं। तदुपरान्त प्रणाम करते-करते 'देव, इधर आइए' कहती हुई पथ दिखाते हुए मुझे स्वयंप्रभा के मन्दिर की ओर ले चलीं।

देहली पर देहली अतिक्रम कर जितना ही मैं स्वयंप्रभा के मन्दिर की ओर बढ़ता गया उतने ही नव-नव विस्मय मेरे नेत्रों के सम्मुख उद्भासित होते गए। अभिषेक के समय स्वयंप्रभा की अनुपस्थिति से मैं खिन्न हो गया था किन्तु, अब देखा कि नवीन स्वामी प्राप्त हुए उसके लिए पुरललनाएँ कितनी उन्मत्त हो उठी थीं। खिन्न होने के पीछे मेरे हृदय में एक ईर्ष्या का भाव भी था। मेरे श्रीप्रभ विमान में जन्म ग्रहण करने के पूर्व निश्चय ही श्रीप्रभ विमान स्वामीहीन नहीं था। मेरी ही तरह अन्य कोई ललितांग देव

यहाँ आधिपत्य करता था। उसकी आयु समाप्त हो जाने के कारण वह निष्प्रभ नक्षत्र की भाँति स्वर्ग से विदा हो गया है। उसी की जगह आज मैं अभिषिक्त हुआ हूँ। हो सकता है उसकी स्मृति आ जाने के कारण ही पुरललनाएँ अभिषेक अनुष्ठान में उपस्थित न हो सकीं। शायद इसीलिए स्वयंप्रभा भी मेरे पास आने को इच्छुक नहीं हुई। किन्तु अब लगा मेरी वह ईर्ष्या अकारण थी। और चाहे जो कुछ भी हो, स्वर्ग में सोच और अनुशोचना के लिए स्थान नहीं होता। प्रेम-विरह-मिलन तो वहाँ मात्र कथन के लिए होता है। यदि ऐसा नहीं हुआ होता तो मद्यपान कर पुरललनाएँ अपने नवीन स्वामी की अभ्यर्थना में इस भाँति आनन्द से उन्मुक्त नहीं होतीं। जिधर भी दृष्टिपात करता हूँ उधर ही उन्मत्त विलासिनियों को ही देख पा रहा हूँ। स्तूपीकृत रंगीन दिव्य सुगन्धित चूर्ण इस प्रकार उड़ रहा था कि दशों दिशाएँ ही रंगीन हो गयी थीं और अन्तःपुर पहुँचने का राजपथ उस रंगीन दिव्य चूर्ण से इस प्रकार भर उठा था कि लगा उस पर ऊषा की विभिन्नरंगी छाया पड़ रही हो। पुरललनाओं के अंगों में पहने हुए अलंकार और सिर पर धारण किए हुए मन्दार कुसुम उस लाल और हरिद्रवर्ण में और भी सुन्दर लगने लगे थे। उन युवतियों के कानों में नव-कर्णिकाओं के फूल लटक रहे थे। चंचल केश-राशि में अशोक गुच्छ शोभित हो रहे थे। कपोलों पर निष्कम्प अंगुलियों द्वारा अंकित सुचित्रित मंजरी दीप्त हो रही थी। मुझे देखने के लिए सब एक साथ आ रही थीं और अन्तःपुर की प्रतिहारिणियाँ उन्हें निवारित करने के लिए स्वर्ण यष्टि को बार-बार शून्य में आस्फालित कर रही थीं।

गन्धिलावती नगरी में इसी प्रकार रमणियों से मैं परिवृत होकर रहता था। उनसे मैं मन ही मन इनकी तुलना करने लगा। उन दिनों गन्धिलावती की वे रमणियाँ स्वप्निल-मोहमयी-सी लगती थीं। किन्तु आज देखा इनका रूप और अधिक स्वप्नमय और अधिक मोहमय है। मृत्युलोक में मुझे नारी सौन्दर्य सबसे अधिक प्रभावशाली शक्ति लगता था। यद्यपि आज मुझे वह धारणा बदलनी नहीं पड़ी किन्तु, लगा—नारी रूप का जो सौन्दर्य आज मेरी आँखों के सम्मुख अवारित हो गया है इस सौन्दर्य की तुलना में मृत्यु की नारियों का सौन्दर्य था नितान्त अकिंचितकर। स्वर्ग की नारियाँ इतनी शिरिष कुसुम कोमलांगी हैं कि मृत्युलोक की नारियों का स्पर्श अब कठोर कर्कश लगने लगा। ये सब आज मेरे अधीन हैं, मैं इनका प्रभु हूँ, स्वामी हूँ, ऐसा सोचने पर आनन्द की एक सिहरन मेरे समस्त शरीर में प्रवाहित हो गयी।

मैं जितना ही अग्रसर होता गया वे भी नृत्य करती हुई मेरे साथ-साथ चलती रहीं। नृत्य की विभिन्न भंगिमाओं में जब वे स्व-बाहुलताओं को आकाश में उत्क्षिप्त करती तो लगता जैसे अपने समुत्सुक वलय को उच्छ्वलित कर पुष्पधन्वा अनंग देव को चिरकाल के लिए बन्दी बनाने का वे प्रयास कर रही हों। उनकी कनक मेखला की किंकिणिओं सहित हिलती हुई कुरण्ट मालाएँ उनके कटिदेश को घेरकर इस भाँति सुशोभित हो रही थीं कि लगा अनुराग वह्नि ने प्रदीप्त होकर उन्हें वेष्टित कर रखा है। उनके मुख-मण्डल से दिव्य-चूर्ण और कुंकुम छटा विच्छुरित हो रही थी और उस लोहिताभ कान्ति से अरुणायित कुण्डलपत्र इस प्रकार शोभायमान थे कि वे मदन चन्दन द्रुम की सुकुमार लताओं में विलुलित किसलय को भी लज्जित करेंगे। उनके नील वासन्ती चम्पक और कौसुम्ब वस्त्र के उत्तरीय जब नृत्यावेग में आवर्ताकार तरंगायित होते थे तब मेरा मन मानस सरोवर की उत्ताल तरंग-मालाओं-सा उल्लसित हो उठता था। फिर भी न जाने क्यों मेरे मन की गहन कन्दराओं में एक विषाद का, एक वेदना का सुर रह रहकर ध्वनित हो उठता था। जानता हूँ यह स्वर्गोचित नहीं है—स्वर्ग में होता है हर्ष केवल हर्ष। किन्तु मैं सोचने लगा—पूर्ववर्त्ती ललितांग देव की तरह जिसदिन मैं भी इस स्वर्गलोक से विदा लूँगा तो क्या उस दिन इनके नेत्र अश्रुपूरित नहीं होंगे? उसदिन भी क्या ये अपने अन्य नए स्वामी की अभ्यर्थना करने के लिए इसी प्रकार उन्मत्त हो उठेंगी? ये केवल मद को मदमत्त करना जानती हैं, राग को रंजित करना जानती हैं, आनन्द को और आनन्दित करना, उत्सव को और उत्सुक करना मात्र ही जानती हैं, ये नहीं जानतीं दुर्दिन के गर्जन से मुखर मेघ की छाया में केतकी लता की कुसुम कली को प्रेमजल से सिंचित कर संजीवित करना। एक मुहूर्त्त के लिए लगा मेरा निःश्वास जैसे रुद्ध हो रहा है। मेरा प्रयाण काल मानों उपस्थित हो गया है। कण्ठ की ओर दृष्टि गयी। किन्तु नहीं, मेरे कण्ठ की पारिजात माल्य ने मुरझाना प्रारम्भ नहीं किया है। ईशान कल्प के श्रीप्रभ विमान में मैंने तो अभी कुछ समय पूर्व ही जन्म लिया है। अभी तो मेरे सम्मुख लक्ष-लक्ष वर्षों की परमायु पड़ी है। लक्ष-लक्ष वर्षों तक मैं इस श्रीप्रभ विमान के समस्त इन्द्रिय सुखों का भोग करूँगा। यहाँ मृत्युलोक की भाँति जरा-व्याधि उस सुख में बाधक नहीं बनेंगे। मैंने चिर तारुण्य के साथ इस स्वर्ग लोक में जन्म ग्रहण किया है। स्वर्ग होता है केवल भोग के लिए। तब फिर क्यों मैं अपने प्रयाण की बात सोचने लगा? वह दिन तो अभी दूर है, बहुत-बहुत

दूर। आज तो है उल्लास से उसी तरह उन्मादित होने का दिन जिस प्रकार ये सब उन्मादित हो रही हैं। देख रहा हूँ गमन की उत्कंपा से यहाँ भी सुर-सुन्दरियों के केशों से मन्दार कुसुम झर रहे हैं, कानों के सुवर्ण कमल खिसक कर धरती पर गिर रहे हैं। हृदय देश पर बार-बार झटका लगने के कारण गले के हार से बड़े-बड़े गन्धराज पुष्प टूट-टूट कर बिखर रहे हैं। नहीं, अब मैं भी अपने मन को अनावश्यक चिन्ता से भाराक्रान्त नहीं करूँगा। मैं भी स्वयं को आज इस उन्माद, इस उल्लास में आकण्ठ डुबा दूँगा, स्वयं को भुला दूँगा।

किन्तु तभी मेरे मन में आया अवश्य ही गन्धिलावती राजप्रासाद आज मुझे खोकर नीरव और निस्तब्ध हो गया है। आज वहाँ क्रीड़ा पर्वतों पर सुन्दरियाँ अपनी वलय ध्वनि से उन्मादी मयूरों को नृत्य करना नहीं सिखा रही हैं। आज उनके क्रीड़ा-सरोवर के मृदंग चक्रवाक दम्पत्ति को अकारण उत्कंठित नहीं कर रहे हैं। आज वहाँ अन्तःपुर की कुट्टिम भूमि पादालक्तक से रंजित नहीं हो रही है। आज वहाँ विलासिनियों के कण्ठहार महोत्सव के मंगल-कलश को सुसज्जित नहीं कर रहे हैं। आज वहाँ चंचल नेत्रों की किरण में समस्त दिन कृष्णसार मृग में परिपूर्ण है ऐसा नहीं लग रहा है। भुजलताओं के विक्षेप में जीवलोक मृणाल वलय में वलयित है ऐसा प्रतीत नहीं हो रहा है। शिरीष कुसुमों के स्तवक के कर्णपुर से अन्तःपुर की धूप शुक पंखी रंग से रंगीन नहीं हो रही है। शिथिल धम्मिल से च्युत तमाल पत्र अन्तरीक्ष को कज्जलीयमान नहीं कर रहा है। आभरणों की झंकार से हर दिशाएँ किंकणी ध्वनित नहीं हो रही हैं। आज वह प्रासाद निश्चय ही शोकमग्न, स्तब्ध और शान्त है। तभी मेरे कानों में दूरागत मधुर संगीत सह वीणा, विपंची और मृदंग के शब्द गुंजित हो उठे। गन्धिलावती नगरी का राजपथ सुगन्धित जल के वारि-वर्षण से सिक्त हो उठा है। बड़े-बड़े चतुष्पथ मर्दल के गम्भीर घोष और मधुर संगीत में मुखरित हैं, ढेर-सा सुगन्धित अबीर दशों दिशाओं में उड़ रहा है। स्थान-स्थान पर पण्य-विलासिनियों के नृत्य हो रहे हैं। मधुर शिंजन के मंजुल वेणुनाद झनझनायमान झल्लरी की ध्वनि, कलकांस्य और कोशी के मनोहर क्वनन प्रवाहित होकर मेरे कानों में आ रहे हैं। गन्धिलावती नगरी भी आज इस श्रीप्रभ विमान की भाँति उनके नवीन स्वामी की उपलब्धि में आनन्द से उल्लसित हो उठी है। मेरा मस्तिष्क चिन्ता-जाल में उलझ-उलझ गया। विरह, मिलन, विषाद और आनन्द को इतने आस-पास बिखरे हुए मैंने तो कभी नहीं देखा। आज मुझे सब कुछ अर्थहीन-सा

लगा। यह उत्सव जैसा अर्थहीन है शोक मनाना भी वैसा ही निरर्थक है। समस्त विश्व मुझे अन्ध-हृदय हीन यन्त्र-मात्र-सा लगने लगा। प्रेम, प्यार, स्नेह, कोमलता, विषाद, करुणा सभी जैसे अपना अर्थ ही खो बैठे।

पुष्प गुल्मों की वीथिका से होकर मैं अग्रसर होने लगा। मेरे पार्श्व से जो नृत्य करती हुई जा रही थीं उनके हाथों में थी वृहदाकार झल्लरी। उन्मत्त की तरह वे नृत्य कर रही थीं। नृत्य करते-करते उनके केशपाश शिथिल हो गए थे, कबरी बन्धन की मालती माला न जाने कहाँ, कब गिर गयी थी। पावों के नूपुर नृत्यावर्तों का वेग सम्भाल न सकने के कारण द्विगुण रूप में जोर से झन-झन कर रहे थे। उनके भीतर बाहर उन्मत्त आमोद का वेग प्रवाहित हो रहा था। वे मधुपान से मतवाली थीं इसमें कोई सन्देह नहीं था। मैं भी मधुपान कर वैसा ही उन्मत्त बनूँगा नहीं तो पृथ्वी की वेदना को मैं किसी भी प्रकार भूल नहीं सकता। मुझे भूलना ही होगा। सब कुछ विस्मृत कर देना होगा। अब मुझे स्वर्ग का आसव-पान करना होगा। यह बात मन में आते ही एक स्खलितवसना उद्धतयौवना श्रोणीभारालसा मद्यपायिनी स्त्री मेरी ओर आयी और स्वर्ण का फेनिल सुधापूर्ण पात्र मेरे ओष्ठों पर लगा दिया। उस मदिराक्षी के भ्रमर कृष्ण चंचल चक्षु-तारिकाओं में मुग्ध-सा देखते-देखते मैंने उस आसव का निःशेष पान कर डाला। उसने पुनः पान-पात्र भरकर मुझे सुधा प्रदान की। मैंने उसे भी पी लिया। परन्तु देखा—मैं उन्मत्त नहीं हुआ। मेरी चेतना विलुप्त नहीं हुई। मात्र तड़ित प्रवाह की भाँति एक सिहरन मेरे शरीर में प्रवाहित हो गयी। मेरे ललाट का कुंकुम तिलक जैसे और अधिक परिस्फुट हो गया। मेरे कानों के कुण्डल और अधिक द्युतिमान हो उठे।

क्रमशः मैं स्वयंप्रभा देवी के निवास कक्ष के द्वार प्रान्त पर आ उपस्थित हुआ। बाहर जो उत्सव उद्दाम हो उठा था वह यहाँ शान्त था। केवल कक्ष के भीतर से सुमधुर वीण ध्वनि प्रवाहित होकर आ रही थी। वृहद् शिलादान में जो शिलाजतु जल रहा था उसी की एक मादक गन्ध से मेरी नासिका आपूरित हो रही थी। निश्चय ही इस कक्ष का सौन्दर्य अनुपम था किन्तु उस समय उस कक्ष का सौन्दर्य मेरी दृष्टि से ओझल रहा। क्योंकि उस कक्ष की अधिकारिणी देवी स्वयंप्रभा ने मेरे नेत्रों की समस्त दृष्टि को अपनी ओर ही खींच लिया था। द्वार प्रान्त पर खड़ा होकर मैं उसी के अपरूप सौन्दर्य को देखने लगा। उसकी देह एक अत्यन्त धवल प्रभा पुंज से आवृत्त थी। उसे देखकर मुझे स्फटिक गृह में आबद्ध अथवा दुग्ध सलील में निमग्न अथवा

विमल चिनांशुक से समावृत अथवा दर्पण में प्रतिबिम्बित अथवा शरत्काल के मेघपुंज अन्तरित चन्द्रकला है ऐसा भ्रम होने लगा।

कुछ देर पहले पूर्ववर्त्ती ललितांग देव को स्मरण कर मेरे मन में जो ईर्ष्या और ग्लानि-भाव उदित हुए थे लगा मन्दाकिनी की धवल धारा में जिस प्रकार समस्त कलुष धुल जाते हैं उसी प्रकार उसके रूप की स्वच्छ धवलिमा ने मेरे मन के समस्त कलुष और ग्लानि को हरण कर लिया। मुझे वह समुद्र मंथन से निकली साक्षात् लक्ष्मी-सी प्रतीत होने लगी। लगा विधाता ने इसे शंख से कूटकर मुक्ता से आकर्षित कर मृणाल से सम्वृत कर सुधा-चूर्ण से धोकर रज रस से पोंछकर कुटज कुन्द और सिन्धुवार पुष्पों की धवल कान्ति से सज्जित कर निर्मित किया है। मैं अपलक उसे निहारता रहा। मृत्युलोक के प्राणियों की पलकें झपकती हैं किन्तु स्वर्गलोक में ऐसा नहीं होता अतः दृष्टि आनन्द में मुझे वह बाधा भी नहीं थी।

विद्युत के पश्चात् होने वाले तीव्र आलोक की तरह स्वयंप्रभा की सामग्रिक सत्ता मेरे नेत्रों के सम्मुख उभरने लगी। माणिक्य जड़ित कुण्डल में सीमन्त-चुम्बी चूड़ामणि के किरण प्रवाह में मदिरा रस से धुले दीर्घोद्दाम चिकुर में ज्योत्सना-सी किरण बिखेरती मृदु हास्य के तारल्य में मुझे वह अत्यन्त मनोहारिणी लगी। तभी उसकी दृष्टि मुझ पर पड़ी। मुझे देखकर उसके मुख पर जो सुस्मित हास्य बिखर उठा मानो वह पद्मरागमणि की थाल पर मुक्ता का स्वप्न था। मानस सरोवर का श्वेतवर्ण सहस्रदल कमल का लावण्य था। मैं विमुग्ध सा उस रूप सुधा का पान करने लगा।

स्वयंप्रभा उठकर खड़ी हुई। फिर मरालगति से चलती हुई मेरे सम्मुख आकर स्कन्धों पर हाथ रखा। मेरी समस्त देह एक बारगी ही रोमांचित हो उठी। मैं उसके नेत्र गोलकों को एकटक देखता रहा। मुझे लगा जैसे मैंने स्वयंप्रभा को प्रथम बार ही नहीं देखा है इसके पूर्व भी कहीं देखा है। वह भी केवल एक जीवन में नहीं कई-कई जीवन में। स्वयंप्रभा अन्य किसी ललितांग देव की नहीं है वह मेरी है एक मात्र मेरी।

स्मृतिपटलों पर उभर पड़ा वह जीवन जब हम उत्तर कुरुक्षेत्र में युगल रूप में उत्पन्न हुए थे। वह स्थान था सीता नदी के उत्तर तट पर जम्बू वन के पूर्व भाग में। उस समय उत्तर-कुरुक्षेत्र की मिट्टी शर्करा-सी मधुर थी, जल था शरत्कालीन चन्द्रिका-सा निर्मल। उन दिनों हमें किसी वस्तु की आवश्यकता ही नहीं थी कुछ अभाव भी नहीं था।

मुझे एक रात्रि की बात स्मरण हो आयी। उस दिन भी हम दोनों आज की ही तरह एक दूसरे के सम्मुख विमुग्ध बन खड़े थे। ऊपर था पूर्णिमा का अतन्द्र चंद्र। नीचे थी स्वच्छ सलिला कलनादिनी सीता। हवा थी जम्बूवन की गुल्मों भरी गन्ध से मादक। उस दिन भी स्वयंप्रभा ने इसी भाँति मेरे स्कन्ध पर हाथ रखा था। मैं उसके नेत्रों में अपना प्रतिबिम्ब देखता रहा। देखता रहा और डूबता रहा। वे नेत्र नहीं मानों अतलान्त समुद्र थे। उस समुद्र में उस दिन की ही भाँति आज भी डूबने लगा। बाहर का कलनाद क्रमशः दूर होता जा रहा था। लवंग और पेला फूलों की समस्त गन्ध को जैसे दक्षिणी समीर वहाँ एक साथ उड़ेले जा रहा था। मैं अनायास ही उसे आलिंगनबद्ध कर शय्या पर ले आया।

तत्पश्चात् कितने दिन कितनी रात्रियाँ व्यतीत हुईं कह नहीं सकता। कारण श्रीप्रभ विमान में चन्द्र सूर्य की गति नहीं थी, ऋतु, वर्ष, महीने नहीं थे। बस था नित्य अन्तहीन एक वर्तमान। उसी अन्तहीन वर्तमान में हम एक दूसरे के आलिंगन में अभिन्न बने समाए हुए थे। उस अनवच्छिन्न आनन्द में मैं सुदूर मृत्युलोक की बात एकदम भूल गया। एक अभूतपूर्व सुप्ति और जागरण के मध्य मेरा समस्त समय व्यतीत होने लगा।

[क्रमशः

अर्द्ध कथानक

बनारसी दास

[पूर्वानुवृत्ति]

इस बीच पिता जी के कई पत्र मिले किन्तु किसी का भी प्रत्युत्तर देने का साहस मुझमें नहीं था। पर मेरे दुर्भाग्य का कथानक मेरे बहनोई उत्तमचन्द से उन्हें ज्ञात हो गया। उत्तमचन्द दुलासा के पुत्र और मेरी दो बहनों में बड़ी बहन के पति थे। वे उस समय आगरा में रहते थे एवं जवाहिरात का कारोबार करते थे। उन्होंने अपने घर लिखा कि मैं समस्त अर्थ नष्ट कर भिखारी हो गया हूँ। उनका यह कार्य निश्चय ही रिश्तेदार जैसा नहीं था। यह संवाद शीघ्र ही जौनपुर में पिता जी तक पहुँच गया। सुनकर वे मर्माहत हुए। उन्होंने घर जाकर मेरी माँ को सब कुछ सुनाया और जो कुछ घटित हुआ उसके लिए उन्हें दोषी ठहराया और कड़ी बातें सुनायीं क्योंकि उनके कहने से ही तो पिताजी ने मुझे आगरा भेजा था।

"मैंने उस समय तुमसे कहा नहीं था कि यह लड़का भिखारी होकर घर लौटेगा? हाय! मेरा कथन अक्षरशः सत्य निकला। उस निर्लज्ज ने तो मुझे एक बारगी ही डुबा दिया। उसने मुझे मूल पर्यन्त उखाड़ दिया। उसने ऐसा कुछ नहीं रखा जिसे लेकर मैं नया व्यापार करूँ।" वे तब तक चिल्ला-चिल्लाकर मुझे भला-बुरा कहते रहे जब तक कि दुःख और हताशा से टूट नहीं गए। फिर उन्होंने मेरी पत्नी को उसी समय खैराबाद भेज दिया।

इधर मैं जो कुछ भी सामान्य-सा बचा था उसे लेकर ही जीवन यापन करता रहा। मेरे पास जो कुछ सोना-चाँदी एवं छोटी-मोटी चीजें थीं—सब बेच दीं। अन्त में कुछ खुदरा पैसे के अतिरिक्त मेरे पास कुछ नहीं बचा। मैंने बाजार जाना भी बन्द कर दिया।

सन्ध्या का समय मैं कविता पाठ और गाना गाकर काटता था। उस समय मेरे घर दस-बारह आदमियों की गोष्ठी होती। मैं उन्हें मधु मालती और मृगावती की प्रेम गाथा गाकर सुनाता। जो आता वह मेरे गीत और कहानी सुनकर मुग्ध हो जाता।

इस प्रकार मैं अपनी साँझें आनन्द से ही गुजारता। यद्यपि मेरी जेब एकदम खाली थी। कल क्या खाऊँगा इसका भी ठिकाना न था। वहाँ जो

आते थे उनमें एक हलवाई था। वह कचौड़ी बेचता था। उससे मैं उधार कचौड़ी लेता। मैं घर से बाहर जाता था उससे कचौड़ी लेने ही। मात्र कचौड़ी खाकर ही मैं रहता था और कुछ नहीं खाता था। नास्ते के समय भी कचौड़ी ही खाता। बहुत बार वे ठण्डी और बासी हो जातीं। मेरे हलवाई मित्र को मेरी वास्तविक स्थिति ज्ञात नहीं थी। एकदिन एकान्त पाकर मैंने उसे अपनी वास्तविक स्थिति बतायी और कहा कि मेरे पास एक कानी कौड़ी भी नहीं है और तुमसे उधार करके बहुत कचौड़ियाँ खायी हैं। मैंने उसे सावधान कर दिया कि वह मुझे अब और उधार कचौड़ी न दे। कारण मैं उसका पावना किसी दिन चुका भी सकूँगा या नहीं इसमें सन्देह है।

हलवाई दयालु प्रकृति का था। उसने बीस रुपये तक की उधार कचौड़ी खाने की मुझे छूट दी और कहा—रुपए के लिए वह कभी तगादा नहीं करेगा। हमारा यह समझौता गोपन रखा गया। मेरे अन्य आगन्तुक मेरी परिस्थिति को बिल्कुल नहीं जान पाए। हमारी सन्ध्या गोष्ठी चलती रही। बाकी समय मैं एकाकी काटता क्योंकि उस समय कोई नहीं आता।

इस प्रकार मैंने छः मास व्यतीत किए। फिर एक दिन मेरे श्वसुर के भाई प्रभात तांबी का पुत्र ताराचन्द तांबी मेरे घर आए। बिना कुछ बोले वे अन्य आगन्तुकों के साथ चुपचाप बैठे रहे। फिर जब सब चले गए उन्होंने मुझसे बात की और दूसरे दिन अपने घर खाने को आमंत्रित किया। यद्यपि मेरी जाने की इच्छा नहीं थी किन्तु उन्होंने मुझे ना नहीं करने दिया। उनका व्यवहार प्रेम और श्रद्धा भरा था। दूसरे दिन सुबह वे मुझे लेने आए और बोले—'खाने के पश्चात् यदि मैं चाहूँ तो बाजार जा सकता हूँ।'

खाने का निमंत्रण तो मात्र मुझे उनके घर ले जाने का बहाना था। कारण उनके घर जाने के पश्चात् ही उन्होंने अपने आदमी को मेरा सब सामान लाने को कहा। घर का किराया भी जो बाकी था वह सब चुका दिया। उन्होंने मुझे अपने घर पर रहने की विनती की। वे इतना आग्रह करने लगे कि ना कहने का कोई उपाय ही नहीं था।

अतः मैं बिना कुछ काम किए स्वच्छन्द भाव से उनके घर पर रहने लगा। दो मास बीत गए। फिर अपने व्यवसाय में प्रवृत्त हुआ। इस बार दिल्ली निवासी ओसवाल जैन धर्मदास जी के साथ भागीदारी में काम प्रारम्भ किया। धर्मदास जी जसू और अमरसी के भाई थे। जसू और अमरसी प्रख्यात जवाहिरात के व्यवसायी थे।

धर्मदास जी उनके परिवार के कुपुत्र थे। वे दुर्जनों की संगति करते। अतः उनमें बहुत सी बुरी आदतें पड़ गयी थीं। वे अफीम खाते और बेहिसाब खर्च करते। एतदर्थ भागीदार बनने के पूर्व कागज-पत्र तैयार किए गए और मैंने उन पर हस्ताक्षर किए। धर्मदास जी को भाइयों ने कारबार के लिए पाँच सौ रुपये दिए।

किन्तु मेरे लिए धर्मदास जी अच्छे भागीदार थे। हम दोनों ने घनिष्ट मित्रों की तरह काम किया और छोटा-मोटा जवाहिरात का काम खड़ा कर लिया। सुबह से सन्ध्या तक आगरा के बाजार में हम लाभजनक सौदे के लिय घूमते। क्रमशः माणिक, मणि और चुन्नी के कार्य में उन्नति करने लगे। हम बही-खाता रखते और रोज का जमा खर्च करते। लोग धीरे-धीरे हमें जानने लगे और हमारा विश्वास करने लगे। मोटा-मोटी अच्छा जीवन बिताने लायक आय होने लगी।

मेरे हलवाई मित्र का जो उधार था अब उसे चुकाने लायक पैसे मेरे पास हो गए थे। चौदह रुपये की कचौड़ी मैंने खाई थी जो कि तीन बार में चुका दिए। हलवाई भी अपने रुपये पाकर खुश हुआ।

दो वर्ष तक मैंने यही व्यवसाय किया। फिर अच्छा नहीं लगने के कारण खैराबाद जाना स्थिर किया। मैंने धर्मदास जी के बड़े भाई जसू साह को अपनी आगरा छोड़कर जाने की बात बतायी और मेरे पास मूलधन के रुप में जो भी मणि जवाहिरात थे वे उन्हें वापस लौटाए। जसू साह ने उन्हें बेचकर नगद रुपए करने को कहा। मैंने वही किया और उन्होंने जो पाँच सौ रुपए नगद दिए थे वे लौटाए। उसमें से एक पैसा भी नहीं रखा।

१६७० सम्वत् में मैंने धर्मदास जी के साथ भागीदार के रूप में जो कार्य किया था बन्द कर दिया। कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व जिस प्रकार कागजात तैयार किए गए थे बन्द करने के समय भी उसी प्रकार किए गए और दो वर्ष में मैंने दो सौ रुपये कमाए। ये दो सौ रुपये मेरे दैनन्दिन खायी-खर्च में व्यय हो गए परिणामतः मेरे पास कुछ नहीं बचा। दो वर्ष का हाड़तोड़ श्रम व्यर्थ हो गया। एक कानी कौड़ी भी पास में नहीं थी। मैंने समुद्र मन्थन किया और निकली—घौंघी। हींग बेचने वाले की कहानी की तरह जब हानि-लाभ का हिसाब करने बैठा तो लगा मूर्ख की तरह मैंने सब कुछ खो दिया। इन दो वर्षों में अर्थ के लिए पागल की तरह नाचा किन्तु हाथ खाली ही रहा।

लेकिन आगरा छोड़कर जाने के पूर्व भाग्य ने मुझ पर तरस खायी। एक दिन जब मैं अपने घर के पास वाली गली से गुजर रहा था तो रास्ते में एक छोटी पोटली पड़ी पायी। उसे लेकर मैं जल्दी से घर लौटा। इस पोटली में आठ मोती थे। उन्हें देखकर मैं रोमांचित हो गया। मुझे लगा मैंने जादू भरे रत्न पाए हैं जो मेरी समस्त इच्छाएँ पूर्ण कर सकेंगे। मेरा एक थोथा तावीज था। मैंने उन मोतियों को उसमें भर दिया और कमर में इस प्रकार बाँध लिया ताकि दिखाई ही नहीं पड़े। इस भाँति मैंने आगरा से पूरब की ओर यात्रा प्रारम्भ की। शीघ्र ही खेराबाद जा पहुँचा और सीधा मेरे श्वसुर कुल्ला साह (कल्याण मल जी तांबी) के घर उपस्थित हुआ।

मैं जब ससुराल पहुँचा सन्ध्या हो गयी थी। रात में मेरी पत्नी ने पूछा आगरे में मैंने कैसे दिन काटे। मैंने झूठ-मूठ बनाकर इस प्रकार कहा जैसे आगरे में मेरे दिन खूब ठीक तरह से ही बीते। किन्तु मैं झूठ बोल रहा हूँ यह उसने पकड़ लिया और अनुयोग के स्वर में बोली "क्यों झूठी बड़ाई कर रहे हो ?"

तब मैंने उसे सारी सत्यकथा सुनायी। बोला—"मैंने जो कुछ कमाया सभी खर्च कर दिया है। अभी मेरे पास एक पैसा भी नहीं है।"

मेरी पत्नी ने मुझे सान्त्वना दी। बोली—"भगवान मनुष्य को सुख-दुःख दोनों ही देता है। अभी तुम्हारे दुःख के दिन हैं। सुख के दिन भी पुनः आएँगे। भाग्य अन्यथा नहीं होता। पाप-पुण्य का फल भोगना ही पड़ता है।"

सारी रात हम आगरा की बातें करते रहे। सुबह जब मैं अकेला बैठा था मेरी पत्नी चुपचाप मेरे पास आयी और बीस रुपये देकर बोली—"प्रयोजन के लिए मैंने ये रुपये जमा किए हैं। तुम्हारा अभी दुर्दिन है। ये रुपये तुम्हारे काम आएँगे।" फिर धीरे से बोली—"स्वामी, निराश मत होइए। मनुष्य बचा रहा तो सब कुछ पा सकता है।"

फिर उसने अपनी माँ से एकान्त में सब बातें खोलकर बतायीं और ये बातें किसी से नहीं कहने को कहीं।

वह बोली—"माँ, मैं तुम्हारी लड़की हूँ। मेरे असमय में तुम मेरी सहायता करो। मेरा सम्मान नष्ट होने जा रहा है। कुछ दिनों के बीच यदि तुमने कुछ नहीं किया तो मेरे पति मेरा परित्याग कर चले जाएँगे। यद्यपि वे कुछ बोले नहीं हैं फिर भी लज्जा और अपमान से वे पीड़ित हैं यह मैं समझ गयी हूँ।"

[क्रमशः

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

कुशल-निर्देश ।। दिसम्बर १९८२

प्रस्तुत अंक में है 'योगीन्द्र 'युगप्रधान सद्गुरु श्री सहजानंदघनजी महाराज के मुमुक्षुओं को दिए पत्र' (अनु० भँवरलाल नाहटा), 'श्रीमल्लिनाथ' (गु० शतावधानी पं० धीरजलाल टो० शाह' अनु० भँवरलाल नाहटा), 'जूनागढ़ में सेठ के तालाब पर दादाजी की छतरी' (भँवरलाल नाहटा), 'सुख-शान्ति का सरल एवं सर्वोत्तम मार्ग 'आवश्यकताओं को कम करिए' (अगरचन्द नाहटा)।

जैन-जगत ।। दिसम्बर १९८२

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'भगवान महावीर के अन्तिम सन्देश' (अगरचन्द नाहटा), 'व्यवहार और अध्यात्म' (जमनालाल जैन), 'निष्ठावान समर्पित समाज सेवकों की कमी क्यों ?' (प्रतापचन्द्र जैन), 'अहिंसा आत्मचेतना' (मुनिश्री सुखलाल), 'भारतीय सत्य-आग्रही का अपूर्व सत्याग्रह—समाधिमरण-मृत्यु महोत्सव' (प्रेमचन्द जैन), 'पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी' (नृपराज जैन)।

तीर्थंकर ।। दिसम्बर १९८२

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'गीता प्रवचन : पारदर्शक चिन्तन का निर्मल निर्झर' (काशीनाथ त्रिवेदी), 'पं० बेचरदास : जीवन्त विद्यातीर्थ' (मुनि वात्सल्य दीप, डा० रमणलाल ची०शाह), 'देह विसर्जित करना विनोबा का' (बातचीत : डा० करुणाकर त्रिवेद/डा० नेमीचन्द जैन), 'धर्म-साधना में पौरोहित्य : जैन दृष्टि' (कन्हैयालाल सरावगी), 'लाख रुपये एक रुपया।' (नेमीचन्द पटोरिया), 'क्षमा' (वृषभ जैन), 'समणसुत्तं चयनिका' (डा० कमल-चन्द सोगानी), 'अन्तिम पृष्ठ : चिन्तन के रूप में खत' (गणेश ललवानी)।

तुलसी-प्रज्ञा ।। अक्टूबर-दिसम्बर १९८२

योग पाठ्यक्रम विशेषांक-१

जैन आगमों में योग विषयक जो सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है उसमें से आयारो व ठाणं से चुने हुए अंश विशेष का टिप्पण सहित संकलन किया गया है।

श्रमण ।। दिसम्बर १९८२

इस अंक में है 'प्रातिभज्ञानात्मक चिन्तन : सापेक्ष चिन्तन' (पण्डित रामदास 'गंभीर'), 'मन की शक्ति बनाम सामयिक' (युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ)।

Vol. VI No. 9 : Titthayara : January 1983
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

B-

Hewlett's Mixture
for
Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) PVT. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700001